# मनुष्य बनो

# انسان

# BE MAN



भाग्य चले

वार्षिक मूल्य ३.५०

संरक्षक व संस्थापक

परम संतः- दयाल फ़क़ीर चन्द जी महाराज .
१८ रेलवे मन्डी होशयारपुर पंजाब.

[ परम पूज्य ठाकोर साहब जी महाराज ]

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमदं: पूर्णात्पूर्णः मुदच्यते।
पूर्णस्यः पूर्णमादाय पूर्ण मेवाह शिष्यते॥

❀ मनुष्य बनो ❀

| वर्ष १४ | अगस्त सन् १९६६ श्रावण सं० २०२३ वि० | सं० ११/१६७ |
|---|---|---|

साहब समरथ सॉईयां सत गुरु सच पुरुष।
साहब से सब होत है, बन्दे से कुछ नाहिं।
राई से पर्वत करे, पर्वत राई मॉहिं॥
साहब सम समरथ नहीं गरुआ गहिर गँमभीर।
अवगुन मेटे गुन गहे, छनिक उतारे तीर॥
ना कुछ किया न कर सके नहिं करने योग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भये कबीर कबीर॥
ना कुछ किया न कर सके, नहिं कुछ करने योग।
जो कुछ कियासो हरि किया, दूजा थापें लोग॥
जो कुछ किया सो तुम किया, मै कुछ किया नांहिं।
कैसे आखूँ मैं किया तुमही थे मुझ मांहिं॥
धन धन सांई तू बड़ा, तेरी अटुरम रीत।
सकल भुवन पति सांईयां, फिर भी अगम अतीत॥
जिसके कोई संग नहीं, तिसका तू सब होय।
सब पर तेरा हुक्म है, मेट सके नहीं कोय॥
इत कूआं उत बावड़ी, इत उत थाह अथाह।
दुइ दिस अफना फन करे, समरथ पार निवाह॥
घट समुद्र लख ना पड़ै, उठ लहर अपार।

दिल दरिया समरथ बना, कौन लगावै पार ॥
मेरा किया न कुछ भया, तेरा किया होय।
तू कर्त्ता सब कुछ करै करता और न कोय ॥
अवगुन हारा गुन नहीं, मव का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ साईयां, तहि लगावें ठौर ॥
तुम तो समरथ साईयां, गह कर पकड़ो बांह।
धुर ही ले पहुँचाइयो, मत छोड़ो मग मांह ॥
बुरा जो देखन मैं चला. बुरा न मिलिया कोय।
जब दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न होय ॥
कबीर सब से हम बुरे, हम से भला सब कोय।
जिन ऐसा कर बूझिया, मित्र हमारा सोय ॥
धरती सब कागज करूँ, लेखनि सब बन राय।
सात सिंध की मस करूँ, हरि गुन लिखा न जाय ॥
मुझ में इतनी शक्ति कहां, गाऊँ गला पसार।
बन्दे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥
सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रह्मण्ड।
कहैं कबीर सबको लगै, देह धरे का दन्ड ॥
देह धरे का दन्ड जो, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, अज्ञानी वहै रोय ॥
भूप दुखी अबधो दुखी, दुखी रंक विपरीत।
कहैं कबीर यह सब दुखी, सुखी सन्त मन जीत ॥
साई तुझसे बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय।
जा के सिर पर तू धनी लाखों मोल कराय ॥
बालक रूपी साईयां, खेलैं सब घट मांह।
जो चाहैं सो करत है, भय काहू का नांह ॥
साई मेरा बानियां, सहज करै व्यौपार।
बिन डंडी बिन पालड़ा, तौलै सब संसार ॥

...१६ से आगे

## ॥ मनुष्य बनो ॥

समस्त जीवन अमरपद को ढूंढता आ रहा हूँ, अमरपद होने का अटल विश्वास होगया। किन्तु यह निश्चय नहीं है कि वहां स्थायी वासा मिलेगा कि नहीं। यह संसार महा कठिन जाल है। मेरे मित्र चाहते हैं कि मैं अभी और जीवित रहूँ-यह मुझसे प्रेम करते हैं और मैं ऐसी चाह रखने वालों को अपना शत्रु समझता हूँ।

रोते हैं झूंठा रोना, जो चलने को हम हुये।
क्या खूब बेवफा भी, वफादार हो गये॥

क्या रक्खा है; इस संसार में, दो वर्ष और जीया तो क्या? फिर भी तो जाना है। मित्रो। यह इच्छा किया करो कि मैं इस जाल से निकल जाऊँ। तब तुम हमारे हितैषी हो।

"जिन साहब से भय निरंजन, सो तो पुरुष है न्यारा"।

मेरा अपना ही कर्म है, अपनी ही आश थी कि मैं अपना अनुव कह जाऊँगा। आज २७, २८ वर्ष से कहता आ रहा हूँ। दूसरों क्या लाभ पहुँचा मुझे ज्ञात नहीं। कुछ सज्जन प्रेम करते है। मेनेवा करते हैं। सच्चे हृदय से उन सब का भला चाहता हूँ। मान क राज्य और जगत कल्याण। इसकी कामना करता हूँ।

गुरु सम दाता कोई नहीं, गुरु हैं परम दयाल।
गुरु के चरन सरोज गह, ऋषि मुनि भये निहाल।
मुक्ति पदारथ तब मिले, जब गुरु होंय सहाय।
बिन गुरु भक्ति फंद यम, कभी न काटा जाय।

## ॥ हमारी खोज ॥

ढूंढे तो नहीं मिलते हो, ढूंढे से कहीं तुम
और फिर यह तमाशा कि, जहां हम हैं वहीं तुम।
बस जाओ मिरी आँख में, इस तरह कहीं तुम
जिस सिम्त नजर जाये, नजर आओ तुम्ही तुम
सब ढूंढते फिरते हैं जहां, तुम नहीं होते

...या।
...नूर।
...री दूर।
...हूँ याद।
...य आसानी से।
...ते हैं इबादत का जतन।
...आगे, सुनते खुद को भूलो भाई जान।
...जात में वासिल रहोगे खुद को जान।
...अजीज,
को फिक्रो गम की कुछ न हो दिल में तमीज।

॥ मनुष्य बनो ॥

और फिर यह शिकायता है, कि मिलते ही नहीं तुम ॥
यों उनसे मुलाकात का, होना नहीं मुम्किन ।
अभी कुछ रोज और रहो, गोशा नशीं तुम ॥
फिर तुम पै करम होगा कभी, मुर्शिदे कामिल ।
देखोगे अपने आप में, सब कुछ ही यहीं ...
खोजत खोजत खो गये, पाया नहीं ...
बृथा निकली खोज, खोज से ...

(३) क्या किसी से अपन...
चार दिन के ...
(४) क्यों ...

॥ मनुष्य बनो ॥

(१ वष १४

(२) सर पै तेरे दस्त है करतार का, वह है मालिक सतगुरु संसार का ।

(५) २ जुस्तजू किस की करें बेकार है, गुफ्तगू करना अबस लाचार है ।

(३) क... दिल में दिल देकर पड़े रहते हैं हम, बात चीत करना किसे दरकार है ।

(७) ... मौज में उसके बराबर तुम रहो, जिस तरह रक्खे उसी में खुश ...

अप... वह है दाना दिल बड़ा हुशियार है, नाम जो लेता है ... ।

एका... भाई की खिदमत करो जी जान से, वह हैं सब के दिल की परख लो ।

( मान... खून में रिशता है दोनों का बंधा, ...

भाई साह... देखना चाहो खुदा को है महरबां, करलो दर्शन तुम खुदा के कदरदां ।

पत्र ...ड़ियों में।

प्रद पूर्ण है यह

तुम पर और ...

सतगुरु के रूप हैं जीशान हैं, संत मत की जान हैं और प्रान हैं

खोल कर सब सारी बातें कह दिया, राज सारा आज तुम को दे दि...

होके प्रगट कर दिया अज्ञान दूर, अशरफ उलमखलूक हैं नूर...

सर झुकाता हूँ उन्हें मानों हुजूर, दर्शनों से होतीं बलायें ...

आप दर्शन करना सुबह और शाम में,
नाम उन का लेना हो गुमनाम में।
राधा स्वामी रूप उनको जान लो,
महर्षि के पुत्र उनको मान लो।
उनका है उपकार इस जगत में बड़ा,
जिस्म इन्सानी में सतगुरु है खड़ा।
जिस को दर्शन करना है करले जरूर,
आप आजायेगा दर्शन से सरूर।
दाता ने चोला है बदला आप खुद,
वस्फ अपना भर दिया है होके चुप।
जिसको आँखे हैं मिलीं जानेगा रूप,
हैं कबीर नानक और राधस्वामी सरूप।
अब जुबां में ताब नहीं है महरबां,
हों बयाँ किस तरह सब खूबीयाँ।
जानता और बूझता रहता हूँ चुप,
भाई मेरे बाप मेरे सतगुरु के रूप।
राधा स्वामी धाम के बासी हैं ये,
शान्ति के और आनन्द के राशी हैं ये।
तू झुका सर इनको सब कुछ मान तू,
हैं जगत के ये पिता इनको जान तू।

यह जो कुछ भाई जी ने लिखा है, नये सौ पैसे सत्य है। हम सब इसके लिये उनके कृतज्ञ हैं। क्यों ? इस लिये कि:—

कामी तरे क्रोधी तरे, पापी तरे अनन्त।
आन उपासक कृतघन, तरे न नाम रटन्त।

सब तर सकते हैं। किन्तु आन-उपासक और कृतघन नहीं तर सकते। हमें तो दाता दयाल जी और परम पिता जी का विश्वास है कि हम तर गये और तर जायेंगे।

तारने वाले ने तारा, तर गये हम तर गये।
जिनको तरना था तरे, भव निधि के वह तट पर गये ।।

जब हमें कोई भाव, विचार, संकल्प, वासना, इच्छा ही नहीं रही। उनकी दया से सब काम पूरे हो गये तो हम समझते हैं कि हम इस भवसागर से पार हो गये तर और गये। इसलिये हम कृतघन नहीं होना चाहते और न किसी को इसकी सम्मति देते हैं। संतों के मार्ग में प्रत्येक जीव को मानवता सिखायी जाती है और जीवन में आशा वादी रहने का गुरु बताया जाता है। निराशावादी नकारत्मक विचार सत्संग में दिये ही नहीं जाते। जो जीव संशय और भ्रम और असमंजस में रहते हैं। हाय। यह न हो जाये, हाय यह काम न बिगड़ जाये तो फिर उनकी वैसी ही दशा होती है:—

इन्सॉ को चाहिये कि न सोचे बुरी कभी।
रहती है होके बात वह जो आई ख्याल में ।।

बुरी बात सोचे ही नहीं। अपने सतगुरु पर पूर्ण विश्वास रक्खें। हमारी समझ में विश्वास ही गुरू कहलाता है। कोई भी बात उनसे छिपाना नहीं चाहिये। छल कपट को छोड़कर जो उनके दरबार में जाते हैं, अपना मनोरथ सिद्ध करते हैं। प्रसन्नचित रहने का अपना स्वभाव बनाओ। दूसरों को प्रसन्न करो, और प्रसन्नता लो। यदि हम प्रसन्न तो हमारा मालिक प्रसन्न, और सब कोई प्रसन्न। यदि हम प्रसन्य नहीं तो कोई भी प्रसन्न नहीं। अपने क्रियात्मक जीवन से इसे करके दिखाओ।

खुश रहो और हो खुशी की जिन्दगी।
खुश दिली ही है खुदा की बन्दगी ।।

दूसरी बात—सादा जीवन उच्च विचार। हो जायें तो बेड़ा पार।

जिन्दगी सादा रहे ऊँचे रहें तेरे ख्याल।
जल्द हासिल होगा तुझ को, आप इन्सानी कमाल ।।

दाता दयाल जी वर्णन किया करते थे "उतावला सो बावला"। जल्दी का काम शैतान का। जो काम हो सहज स्वभाव और सहज रीति से हो। तीसरी बात यह है कि जब तक अपने आप की पहिचान नहीं होगी तब तक हम दूसरों को कैसे समझेंगे। आप आप को आप पहचानों। कहा और का नेक न मानों। अपनी पहिचान गुरू की संगत से होती है। हम कौन हैं कहाँ से आये हैं, कहां जायेंगे ? (४) यदि कोई हम से घृणा करता है तो हम उसे प्रेम की दृष्टि से देखें। पर है यह महा कठिन। बड़ी ठोकरें खाने के पश्चात् यह बात समझ में आती है। (५) इसी प्रकार हमारा भोजन सादा हो। और उतना ही खायें जो कि आवश्यक है। स्वामी जी महाराज ने कहा है, भोजन थोड़ा खा, तेरे भले की कहूँ। औरन सुख पहुँचा तेरे भले की कहूँ। मीठी वाणी बोल, तेरे भले की कहूँ। हिंसा चित ना धार तेरे भले की कहूँ। मैंतो यह कहुँगा कि: —

राहे खुदा में आजा तू अपने सर के बल चल।
है नाक का वह रस्ता, सीधा न कुछ है हलचल॥
पोथी में पत्रों में, राजे खुदा नहीं है।
ये खंदकें हैं गहरी, तू सोच कर संभल चल॥
जब तक मिले न मुरशिद, इस राह में न आना।
धोके में तू पड़ेगा, हरगिज न तू मचल चल॥

गुरू की खोज व सत्संग करके आगे बढ़े चलो। एक स्थान पर न ठहरो। जो पग पड़े आगे ही पड़े। इस प्रकार चलते हुए अपनी जीवन यात्रा प्रसन्नता पूर्वक सफल कर लोगे। प्रसन्नता पूर्वक जीवन विताने का रहस्य किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। वरन् देखा गया है कि तनिक सी आपत्तिविपत्त, कष्ट कलेश, संकट में जीव भयभीत और चिंताग्रस्त हो जाते हैं। अपना रूप भूल जाते हैं, कि हम सत्-चित आनन्द हैं।

वह नहीं समझते कि:—

मुसीबत जजबये दिल को, तरक्की देके कहती है।
जमी में दबके ताकत, खुद बखुद आती है दाने में॥
तुम्हें सुनकर खुशी मिलती है, मेरी सच्ची बातों से।
मुझे भी लुत्फ कुछ तो मिल रहा होगा सुनाने में॥

इसलिये संकट और भय के समय डरना नहीं चाहिये। यथा शक्ति गुरू का नाम लेते हुए उसे सहन करना चाहिये। फिर वही दुख संकट सुखमय और आनन्द दायक हो जाता है। किसी का भी परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता। कष्ट सहे बिन कामिनी पूतन लेत उचंग।

दुख की बलिहारी है कि, जिसने जपाया नाम को।
सुख के सिर पत्थर पड़े, जिसने भुलाया नाम को॥

तो वह नाम गुरू का दिया हुआ ही हमारी प्रत्येक प्रकार से रक्षा और संभाल करता है। संकट को पास नहीं फटकने देता। इसी को युक्ति समझ. इसी को ज्ञान कहते हैं। बिना इसके वास्तविक प्रसन्नता और मोक्ष मुक्ति नहीं मिल सकती। मेरा तो दाता दयाल और परम पिता जी की गोद में जीवन बीत गया। वही मेरे रक्षक रहे हैं। ६६ वर्ष की आयु तक तो उनकी अपार दया से बड़ी मौज में जीवन बीता। पिछले ढाई वर्ष से कुछ शारीरिक दशा में गिरावट आयी। शारीरिक भोग भोगता रहा। चिकित्सा आदि भी की। अंत में परिणाम यह निकला कि दुख भी सुख ही है। अब औषधियों का भी प्रयोग छोड़ दिया। सब कुछ दाता दयाल और परम पिता जी के ऊपर छोड़ दिया है। सुखी रहता हूँ। इस दशा को वर्णन नहीं कर सकता।:—

सुख के माथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुखः की, जो पल पल नाम रटाय॥
दुख में सुख रहता है तो, हमको नया कुछ भी नहीं।
मौज को क्या जीव जाने, दुविधा का सिर भार है॥

मालिक की इच्छा पर निर्भर हूँ और उनकी मौज में प्रसन्न रहता हूँ।

राजो बरजा रहता हूँ, राजी बरजा हूँ।
वह जानते हैं मुझको कि, मैं मरदे खुदा हूँ॥

## अर्थ विषय

॥ ले० दाता दयाल जी ॥

माया छाया एक रूप हैं, पकड़े हाथ न आवें।
रूप जानले इनका भाई, फिर नहीं यह भरमावें॥
जो भागे माया के डर से, वह कायर अज्ञानी।
माया मिथ्या कल्पित झूंठी, नाटक खेल की खानी॥
नाटक शाला सब जाते हैं, देखें खेल तमाशा।
किसी के चिन्ता उदासी आई, किसी को हर्ष हुलासा॥
साधू साक्षी रूप से देखें, अपना रूप न त्यागें।
नहीं वह भिड़ें न लड़ भिड़ कल्पें; नहीं माया से भागें॥
सूम बना माया की गठरी, अर्थ का लाड़ प्यारा।
सखी माल दौलत को भोगें, रहे सदा छुटकारा॥
नहीं माया है, दुख का कारन, दुख अज्ञान है भाई।
समझले अपना रूप अनूपा, फिर यह हो सुखदाई॥
काम है माया धर्म है माया, अर्थ है माया रूपा।
जो नहीं इनका रूप पिछाने, गिरे भरम के कूपा॥
कूप गिरे सो गोता खावें, कभी नीचे कभी ऊपर।
चेत न आवे, समझ न पावे, भार कष्ट का सिर पर॥
संत समागम जो कोई आवे सारभेद कुछ बूझे।
राधा स्वामी गुरू की दाया, निज स्वरूप की सूझे॥

## गुरू पूजा

॥ ले० परम दयाल जी ॥

ध्यान मूलम् गुरू मूरर्ति, पूजा मूलम् गुरू पदम्।

मैं खोजी हूँ जिज्ञासू हूँ। बचपन से उस राम के मिलने की लालसा थी।

मौज दाता दयाल जी के चरण कगलों में ले गई, मैंने उस राम तथा मालिक को दाता के रूप में मान कर अत्यन्त प्रेम किया। दाता कभी २ संकेते किया करते थे। स्पष्ट नहीं कहा। मैंने स्पष्ट क्यों कहा ? क्यों कि उनके संकेतों को मैं समझ नहीं सकता था. तो मुझे विचार हुआ कि संकेतों को समझना महा कठिन है। संसार को क्यों न स्पष्ट वर्णन कर दिया जाय दया का भाव रखते हुये मैंने स्पष्ट वर्णन से कार्य लिया। जब मैं उनको मालिक मानकर उनसे प्रेम करता था तो वह मेरी सुरत को मालिक की ओर लगाने की अपेक्षा गुरु भक्ति की ओर लगाने का प्रयत्न किया करते थे। मैं दाता के रूप को मालिक समझ कर जो उनसे प्रेम करता था, वह मेरे इस विचर को बदलने के लिये संकेत करते थे। किन्तु में संकेत को समझता न था। उन्होंने एक शब्द में मेरे नाम लिखा था।

मन तू सोच समझ पग धार ! टेक।
बिन समझे कोई सार न पावे, भटके बारम्बार।
संशय दुबिधा और चतुराई, यह अज्ञान विकार ॥ मन
कोई नर पशु है कोई त्रिया पशु, गुरु पशु कोई गंवार।
वेद पशु हैं सब संसारा, बिना विवेक बिचार ॥ मन
माया पशु माया का बंधुवा मुक्ति पशु स्वीकार।
भक्ति पशु बंधन नहीं काटे, बूड़ा काली धार ॥ मन
ज्ञान पशु की क्या करूँ निन्दा,वह ग्रन्थन के लार।
जड़ चेतन की गांठ न खोले, उरझ उरझ रहा हार ॥ मन
योग पशु बंधे योग की रस्सी, बैठे असान मार।
राधा स्वामी चरन शरन बलिहारी, सेवक हुआ भव पार ॥ मन

ऐसे ऐसे शब्द लिखा करते थे दाता दयाल जी। इसके अतिरिक्त, मैं चू कि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ था, हिन्दू जाति

जब गुरू का रूप व गुण आत्मिक से परे है और मालिक भी परे है तो गुरू का शब्द क्यों गढ़ा गया ? मालिक का शब्द ही प्रयाप्त था। क्यों कि मैं तो राम या मालिक के मिलने की लालसा में २४ घन्टे के रोने पश्चात् एक स्वपन तथा दृष्य था जिसने यह विश्वास दिलाया कि वह राम दाता दयाल जी के रूप में आया हुआ है। किन्तु दाता दयाल जी जो कुछ समझते थे वह मेरी समझ में न आता था। अब अनुभव ने सिद्ध किया कि यह गुरू के शब्द का प्रयोग सही है।

चाहे क्यों न एक व्यक्ति समस्त आयु निसंदेह उस परम तत्व सर्वाधार से प्रेम प्रार्थना, पूजा आराधना करे, उसके खिंचाव में मस्त बेसुध होता रहे उस को आनन्द मिलेगा, महा आनन्द मिलेगा, किन्तु शान्ति नहीं मिल सकती। उस मालिक के प्रेम में वह मगन होकर लय होगा. उदासी भी आयेगी, प्रसन्नता और मस्ती भी आयेगी किन्तु शान्ति न आयेगी। जब वह प्रेम के भाव में अन्तर ध्यान होकर उस महान आनन्द को प्राप्त करेगा तो उसका फिर उत्थान होगा। उसकी सुरत फिर वहां से हटेगी। मैं प्रेम में बेसुध होता रहा हूँ। दाता के रूप को राम मानकर मग्न होता रहा हूँ। आनन्द लेता था परन्तु शान्ति न मिलती थी। जब वहां से उत्थान होता फिर थोड़े समय के पश्चात् तथा दूसरे दिन ही फिर वही भाव उठता फिर प्रेम करता पर शान्ति न होती। बात सूक्ष्म है। प्रण के अनुसार वर्णन कर रहा हूँ। देखो ना स्त्री पुरुष मिलते हैं. आनन्द लेते हैं, फिर वहां से उत्थान होता है। महीने के पश्चात् फिर भावुकता उत्पन्न होती है और यह संघर्ष समाप्त नहीं होता। इच्छा गुरू भक्ति से जो मुझे मिला वह यह है कि वह भाव उसे प्राप्त करने का, जो उठता था अब नहीं उठता है। बार बार उस मालिक से मिलने की लालसा नहीं रहती है। पुरुष इस कामना वश स्त्री प्रसंग में आनन्द लेता है. कि किन्तु वह भोग शान्ति नहीं देता। जब उसे स्त्री के रूप का पतालग जाता है, कि वास्तविकता क्या

बार बार उसके प्राप्त करने की खोज समाप्त हो जाती है। प्रेम करती हुई सुरत मग्न होती है। मेल हो गया, किन्तु फिर उत्थान होता है मगर सुरत को शब्द के मिलने की चाह शेष रह गई। गुरु भक्ति जो है उससे क्या होता है? उस मिलाप की लालसा नहीं रहती। यह कब होता है? जब सुरत को अपने और मालिक के रूप का ज्ञान हो जाता है। इस ज्ञान दिलाने वाली शक्ति का नाम है गुरू।

ध्यान मूलम् गुरु मूर्ति, पूजा मूलम् गुरु पदम्।
मंत्र मूलम् गुरु वाक्यम्, मोक्ष मूलम् गुरु कृपा॥

इस वास्ते गुरु मत का ध्येय शान्ति है। यह मेरे जीवन का अनुभव है। मुझे क्या मिला? शान्ति, किन्तु जनसाधारण गुरुमत के अधिकारी नहीं हैं। क्योंकि उनकी इच्छायें भिन्न, भिन्न होती हैं। सन्तों ने दया करके सत्संग की प्रथा प्रचलित की उच्च शिक्षा न देते हुए, सर्व प्रथम इच्छायें सत्संग द्वारा पूरी करा देते हैं। जो कोई उत्कट इच्छा लेकर विश्वास पूर्वक आते हैं, सफल होते हैं।

सत्गुरु वह है, जिसे मिलाप की इच्छा नहीं, मुक्ति की लालसा नहीं। वही गुरु पदवी के योग्य है। ऐसे गुरू क्या करते हैं? मेरे छोटे भाई को दाता दयाल जी ने शान्ति प्राप्त करने की शिक्षा न देकर, उसे काम करने का उपदेश दिया। चूँकि मेरे छोटे भाई की बचपन में संगत सदैव बड़े आदमियों के पुत्रों से रहती थी और उनके माता पिता की दशा देख कर उसे पदाधिकारी बनने की लालसा रहती थी। यदि उसे शान्ति की शिक्षा दी जाती तो वह असफल होता। जिस मन्तव्य के लिये जो कोई जिज्ञासु जाता है, उसे पूरा करते हैं या उसके विचार को उस मन्तव्य से हटा देते हैं। उदाहरणतः एक पहलवान किसी स्त्री पर मोहित हुआ उससे मिलना चाहता था, सफल नहीं हुआ। वह किसी महात्मा के पास गया। उसने युक्ति बताई, औषधि दी. उसने उसको खिलाया, तब रूप समझ में आया, जब मन्तव्य का अनुभव जिज्ञास को हो जाता है तो फिर वह

सन्त या शन्ति के मत की ओर आता है।

गुरु की भक्ति नाम की भक्ति से अच्छी है। यह राम की भक्ति करने वाले मरने के पश्चात् कदाचित ही अपने घर पहुँच पाते हों। मेरे पास प्रमाण नहीं कि उनके साथ क्या हुआ होगा। किन्तु गुरु भक्ति इसी जीवन में शान्ति को प्राप्त कर जाता है। और उसको राम के मिलने की लालसा नहीं रहती। यह है गुरु मत।

माला फेरूं न हरि भजूँ मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझे जपै, तब पाऊँ विश्राम॥

इस वास्ते क्या करना चाहिए? सर्व प्रथम सत्संग। सत्संग में जाने से मानव की समस्त उलझनें, शंका, संदेह संशय धीरे धीरे निवारण हो जायेंगे। तो मैं विवशतः राम पार ब्रह्म, सत अलख अगम, अनामी लोक की अवस्थाओं से बढ़कर गुरु की जात को मुख्य समझता हूँ और यही बात हुजूर महाराज जी ने कहीं है:—

ना जानूं सत्तलोक अनामी। सबसे बढ़कर राधा स्वामी॥

गुरु ने ही इन शब्दों को व्यक्त किया। यही बात दाता दयाल जी ने मुझे लिखी थी।

गुरु भक्ति है सब का सारा। देखा सोचा समझ विचारा॥
मान मान यह बचन हमारा। सोच समझ पग धार फकीरवा॥

जब में दाता दयाल जी को राम या मालिक मानकर उनसे प्रेम करता था तब उन्होंने मुझे ऐसे ऐसे शब्द लिखे थे। एक ही उपाय है सतसंग। गुरु भक्ति क्या है?

गुरु जो कहें सो हित करमान। गुरु जो कहें सो चित धर ध्यान॥

सब के लिये एक ही मार्ग नहीं है। "गुरु भव दुख भंजन हैं" का अर्थ है कि जब कोई भगवान् के प्रेम की चाह में मग्न होता है तो यह भी भव का दुख है। किसी चाह में दौड़ना चाहे वह मुक्ति या राम से मिलने की, या कोई और हो, वह भव ही तो है। कोई पुत्र, वैभव आदि प्राप्त करने के लिये साधुओं के पीछे लगा रहा।

है। सतसंग में जाओ। अनेक बार रेडियेशन से आप ही आप मनकी दशा बदल जाती है। यह रोडियेशन का नियम है। मैं इसे सत्य समझता हूँ। यदि यह न होता तो मैं सतसंग कराना भी अपराध या पाप समझता।

## हुजूर महाराज संत कृपाल सिंह जी के बंचनामृत।

महाराज जो साशन की पंचवर्षीय योजनाओं के वार्तालाप में बहुधा वर्णन किया करते हैं कि कहीं इन्सान बनाने तथा मनुष्य बनाने की भी योजना है? यह काम. महा परुषों का है जो स्वयं मनुष्य होते हैं और मानवता का प्रचार करते हैं।

उनका हर काम नहीं, मसलहत से खाली होता।
क्योंकि बहरे उल्फत में, वह लगाते हैं गोता॥

उनका दया और प्रेम भाव बड़ी रक्षा करता है, मानव जाति की। बड़ा ठोस काम होता है इनका।

आज समय बदल चुका है हमें भी इसके साथ बदलन होगा। इसका यह मतलब नहीं कि हमने घरबार छोड़ देने हैं अथबा अपनी समाज छोड़ देनी है। समाजें धन्य हैं। रहो। घरबार धन्य हैं। इनमें रहो। जिस कार्य के लिये मनुष्म जीबन मिला है वह काम भी करना है। वह काम दो ही हैं एक मानवता सब एक हैं। दूसरे मानव जो हैं, इसकी आगे Background क्या है? यह दो वस्तुयें हमने जाननी हैं। इसलिये महा पुरुष सदैव आते रहे। समय समय पर जिस बात की आवश्यकता रही उसी के अनुसार उसको सुलझाते रहे। आज समाजें अधिक हैं। कोई कमी नहीं। प्रत्येक समाज में शिक्षा तो Basic यही रही कि मानव जाति सब एक है। इस का आदेश संसार में आने का या संतानों में प्रेषित होने का केवल यही है कि मनुष्य, मनुष्य के काम आवे।

यही है इबादत, यही दीनों ईमां।
कि काम आये, दुनियां में इन्सां के इन्सां॥

मनुष्य वही है जो दूसरों के काम आता है, वरन पशु भी अपने काम आसकता है। संसार की यात्रा सुख पूर्वक व्यतीत हो। एक दूसरे से सहानभूति हो। साथ ही अपने आपको जाने, अपनी वास्तविकता को पहिचाने। अपने जीवन आधार से परिचय हो। प्रत्येक समाज की Theoritical and Practical क्रियात्मिक शिक्षा यही रही है। जबतक अनुभवी पुरुष रहे, उससे लाभ उठाते रहे। जब अनुभवियों की न्यूनता हुई तो फिर लकीर की फकीरी रह गई।

तो महापुरुष आते रहते हैं। हम जिस त्रुटी उलझन में फंस जाते हैं, वह फिर नवीन रूप से चेतनता में लाते हैं-कि भाईयो। क्या कर रहे हो? सचेत हो, सावधान हो। जागो, उठो और ठहरो नहीं जबतक कि लक्ष्य को प्राप्त न करलो तथा परम पद पर न पहुँच जाओ। ऐसे होते हैं पूर्ण पुरुष।

आप आप को आप पिछानो। कहा और का नेंक न मानो॥
अपने आपका धारो प्रेम। तब समझोगे प्रेम का नेम॥
अपनी समझ आप जब आवे। तब परमारथ गुरू लखावे॥
अपना भला आप तुम करो। औरों के पीछे मत पड़ो॥
अपनी आंख खुले जब भाई। तब ही गगन प्रकाश दिखाई॥
अपनी मौत स्वर्ग का दर्शन। बाकी सब मिथ्या है भाषन॥
आप जिये तब ही जग जीया। आप मरे पीछे क्या रह्या॥
आप आप को आप संवारो। अपनी बिगड़ी आप सुधारो॥
तब गुरू पूरे होंय सहाई। बनत बनत तेरी बन जाई॥
जो नहीं समझेगा यह बानी। सो तो मूढ़ कूढ़ अज्ञानी॥
राधा स्वामी दीन दयाल। सार समझाय कर किया निहाल॥

—०—

तीन के पार चली सुरत प्रेमी, शब्द की डोर से प्रति बढ़ाई।
शब्द के रूप को धार निरत भई, अन्तर में अपने हर्षाई॥
चौथे में जाय विश्राम किया, वह सत पद सतगुरु है दरबारा॥

रूप अरूप स्वरूप नहीं, नहीं नामी, अनामी सनामी कहावे।
अगम अलख गति अजर अमर विभो,
वही राधा स्वामी का धाम कहावे॥
मन बानी की गम नहीं तामें, बुद्धि सुबुद्धि के पार महाना।
मति न लखे मति में दरसे, अनुभव गति से कोई बिरला जाना॥
यह पद संत का ऊँचा महा, सतसंग बिना कोई सार न बूझे।
जब राधा स्वामी की होगी दया, तब साध हंस संत तत्व को सूझे॥

## सुरत शब्द योग के साधन

साधन और अभ्यास से जो जो सर्व श्रेष्ठ यथार्थ और महत्व पूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं वह निम्न लिखित हैं:—

इससे शारीरिक और मांसिक स्वास्थय ठीक रहता है। जब-तक कि प्राणी शान्त चित्त न हो, उससे अभ्यास नहीं बन सकता। विचारों और चित्त के एकाग्र करने से शारीरिक रचना के अणु २ में समता आ जाती है। शरीर क्यों रोगी रहता है? क्योंकि मन चंचल है, विचार मलिन हैं। मलिन विचारों के मैल से क्रोध, द्वेष ईर्षा आदि उत्पन्न होते हैं। क्रोध और मद के कारण शरीर की नस नाड़ियों में हलघल उत्पन्न होती है। यही हलचल शारीरिक रचना की समता को नष्ट करके रोग लाती है जिस समय मन शान्त रहने लगा, स्वयं शरीर और मन में स्वास्थय उत्पन्न हो जाता है और शान्ति प्राप्त होती है। यह सही है कि कुछ अभ्यासियों का शरीर कांटे की भांति सूख जाता है, क्योंकि वह बहुधा थोड़ा सा भोजन करते हैं, किन्तु इस से कोई हानि नहीं होती। शरीर चाहे शुष्क हो जाये, किन्तु मुखड़े का तेज बढ़ जाता है। यदि शारीरिक स्वास्थय में कुछ गड़बड़ हैं तो उसके कारण और भी होंगे। संभव है इसकी ओर से आवश्यकता से अधिक असावधानी बरती गई हो या बैठने का अधिक साधन किया जाता हो या औरों के कल्पित बोझ को अपने ऊपर ले लिया जाता हो। अतः यह मुख्य २ दशायें हैं। जनसाधारण

है और कहीं अधिक खिंचाव के कारण जान बूझ कर यदि अभ्यासी
शारीरिक मंडल को छोड़ कर आत्मिक मंडल में बैठक रखने की
रुचि रखता है तो शरीर को धक्का पहुँच जाता है। किन्तु चूँकि
आन्तरिक क्रम दृढ़ता से स्थिति है शारीरिक संबन्ध उसके लिये
दुखदाई सिद्ध नहीं होते। जो बात ऊपर कही गई है जनसाधारण
और सूक्ष्म वृति वाले व्यक्तियों के लिये कही गई है।

(२) अन्तर में शब्द सुनने से विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता
है। यह शब्द आकाशीय और अध्यात्मिक राग रागनी हैं। इनमें
अध्यात्म का महत्व रहता है और कुछ ही दिवस के अभ्यास से
यह दशा आजानी संभव है कि जब वह चाहे अचिंत होकर सुरत
की धार को समेट कर अपने अन्तर प्रवेश कर जाये और जाग्रत
के दुख से बच रहे।

(३) रूप और अकृति में सूक्ष्मता आजाती है। मुखड़े से तेज और
प्रकाश का प्राकट्य होने लगता है। आवाज मधुर और सुरीली हो
जाती है और जो शब्द जिभिया से बाहर निकलते हैं। सुनने वाले
पर विशेष प्रकार का प्रभाव डालते हैं।

(४ वास्तविकता का पता होने से वह सुरत की धार की शक्ति को
नष्ट न होने देगा। उसके एक घंटे का काम औरों के अधिक देर
के काम से कहीं अच्छा होगा। क्योंकि बाह्य जगत के कार्य में भ
जब वह लगेगा तो एकाग्र होकर लगेगा और उसका परिश्रम वि
प्रकार का फल देगा। इस प्रकार का व्यक्ति काम भी सब से अ
करसकता है, क्योंकि यों ही बैठे बैठे जहां सुरत को थोड़ी दे
लिये अपने अन्तर समेट लिया उसमें फिर वही स्फूर्ति आ जा

(५) सम्भव है वह अधिक दिनों तक जी सके किन्तु दीर्घ
लालसा निकृष्ट होती है। जिस समय जीव किसी विशेष
सम्पूर्ण कर लेता है तो फिर उसका वहां रहना दुस्तर होता है। प्रकृति
का यह नियम है, इसलिए इसका तो बिचार तक अभ्यासी को न
होना चाहिए। हाथी और बरगद के वृक्ष की आयु अधिक होती है,
... वाली कोई और ही शक्ति है,

जो देवी, देवता, राम, कृष्ण, बाबा फकीर से भिन्न है।

मैं पूछता हूँ कि क्या दस नम्बर के बदमाशों, चोर डाकुओं की जिन्हें हम घृणां की दृष्टि से देखते हैं, रक्षा नहीं होती? होती और निश्चय रूप से होती है, जिसका प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव है। हमारे प्रेमी मा० मोहन लाल जी ने एक घटना सुनाई। वह यूँ है कि एक व्यक्ति ने बटेर पाल रक्खी थी। यदि अकस्मात् इसकी बटेर को बिल्ली खा जाती, तो वह इसका कई दिन तक पीछा करता और उसे तब तक सन्तुष्टि न होती जब तक कि उस बिल्ली को जान से न मार डालता। ऐसे व्यक्ति साधरणतः समाज में पापी गिने जाते हैं। देखिये इस व्यक्ति की मृत्यु आम के छिलके से फिसल जाने के कारण हुई। मानो जैसे कि उसे मरते समय किसी प्रकार का संकट ही नहीं हुआ। इसकी अपेक्षा स्वामी जी महराज, स्वामी राम कृष्ण परम हंस जी, संत तुलसी दास जी और अन्य अनेक महात्मा जन अधिक समय तक बीमार रहने के पश्चात् मेरे। तो फिर पापी सुगमता पूर्वक मरते हैं, महात्म जन कष्ट उठा कर। देखिये ना कितना अन्तर है? तात्पर्य यह है कि जिन्हें हम पापी समझते हैं, उनकी कोई अदृष्टि शक्ति सहायता करने वाली विद्यमान है। इस से सिद्ध होता है कि प्रकृित का मालिक जो सर्व समरथ है उसकी दृष्टि न तो हमारे अवगुणों और पापों पर जाती है और न गुणों तथा पुन्यों पर। पाप और पुन्य मानव के अपने ही विचार के बानाये हुये हैं। क्या ऐसी दशा में वाद विवाद, तुर्क कुतर्क की संभावना? है कदापि नहीं। यहां बुराई, और भलाई पाप् पुन्य आपेक्षिक शब्द हैं। और जब तक मानव की दृष्टि उस समरथ तक नहीं जाती वह पाप पुन्य को गले का हार बनाये रखता है। ज्यों ही उस की दृष्टि उस समरथ तक जाती है त्यों ही उसको क्षणमात्र में पाप और पुन्य के भ्रम से छुटकारा मिल जाता है। दाता दयाल जी वर्णन किया करते थे कि दृष्टि और सृष्टि के मर्म, भेद और रहस्य को पावन सत्संग में समझता है। ...

चाहिये। वरन् उसको इस संसार में शान्ति नहीं मिलेगी। यह पाप और पुन्य का झगड़ा जीवन पर्यन्त समाप्त होने वाला नहीं। मैं स्वयं क्यों इस उलझन में फंसा रहा ? कारण है यह कि जो विचार और संस्कार मुझको बचपन में मिला था कि मैं उस मालिक को देखूँ। इसी विचार या संस्कार ने मुझे धर्मों और पन्थों के चक्र में फंसाया। कानों में उगलियां डालकर वर्षों अभ्यास किया. जप, तप किये। गुरू की देह से लिपटा रहा सारांश ये है कि जितनी दौड़ धूप जितना अधिक परिश्रम और संघर्ष किया, उतनीही अधिक आपत्ति और अशान्ति, शान्ति कहां से प्राप्ति हुई। तो में उत्तर देता हूँ कि शान्ति मुझे वहां मिली, जहां से में चला था :—

दौड़त दौड़त दौड़िया, जहां तक मन की दौड़।
दौड़ थका मन थिर भया, वस्तु ठौर की ठौर॥

मेरे जीवन के अनुभव ने मुझे यहां पहुँचाया है कि मालिके कुल तू अपरम्पार है, तू ही सबका आधार है। ज्यों ज्यों मुझे अनुभव होता गया, त्यों त्यों मैं जीवन को परिवर्तित करता गया। इन दिनों लगभग एक महीने से बीमार हूँ। एक ओर की टांग शुन्न हो गई है, चला फिरा नहीं जाता। क्यों ऐसा हुआ ? प्राणि कहते हैं यह अपने कर्मों का फल है। मान लिया उनका कहना सत्य है। मेरे कर्म मेरे साथ, उनके कर्म उन के साथ। जीवन तो उन वृक्षों में भी है। इसी प्रकार पशु भी दुखी सुखी होते हैं और मरते कटते भी हैं। कोई यह चाहे कि वह जाने कि किस कर्म का दन्ड मिला, है तो बहुधा उत्तर देना कठिन सा हो जाता है। संसार चक्र आश्चर्य जनक है और ऐसा है कि मानवीय बुद्धि चकित हो जाती है। धन्य है कर्म का चक्र, और यही उस समरथ की माया है। किन्तु देखा गया है कि कबीर साहब वर्णन करते हैं। इसलिये संत या उच्च कोटि के महा पुरुष भगवत् इच्छा पर रहने का सदेश देते हैं। उस समरथ को जात कह लो या कुछ और किन्तु वह है, और अदश्य है। उसके

मैंने सन् १९०५ में प्रण किया था कि जो कुछ अनुभव मुझे संत मत में सम्मिलित होने के पश्चात होंगे, वह सब संसारियों को बता जाऊँगा। इसलिये मैं काम करता रहता हूँ। इसके अतिरिक्त मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ और जो कुछ मैं प्राप्त करता रहता हूँ, उसकी सम्पुष्टि कबीर साहब अपनी वाणी से कहते हैं। मैं संतों के मार्ग को सत्य मानता हूँ।

यदि सब कुछ साहब ही करता है तो जैसा कि कबीर साहब अपने शब्द तथा वाणी में वर्णन करते हैं तो उस दशा में मानवीय मन जो नाना प्रकार के भाव, विचार, चिंता, भय, भ्रम, उपाय और उद्योग में ग्रस्त रहता है, उसे न करना चाहिये। उनका समाप्त हो जाना ही भगवत् इच्छा पर रहना है। और यही सर्व श्रेष्ठ दशा है। एक बार मा० मोहन लाल के घर सत्संग हो रहा था। वहां मैंने कहा था कि मैं सत् कबीर हूँ और मैं अब भी ऐसा ही कहता हूँ— स्मरण रहे। मुझे अहंकारी मत समझना या कहना। हे भारत वर्ष के धार्मिक जगत के उन्मत्तो। मैं स्वयं कुछ काल तक उन्मत्त और मस्ताना रहा हूँ। और यही समझता था कि गुरू का रूप मेरे अंतर प्रगट होता रहता है, जो मेरी प्रत्येक रूप से साहायता करता है। ध्यान रहे। गुरू स्वयं तुम्हारा दृढ़ संकल्प, विचार और विश्वास ही गुरू का कल्पित रूप अन्तर गढ़ लेता है। अनेक सत्संगी कहते हैं कि मैं उनकी साहयता करने अफ्रीका, अमरीका और अन्य स्थानों पर पहुँचा। या रोगियों के अन्तर प्रवेश करके उनको औषधियां बता गया। मरते समय उन्हें साथ ले गया और संकट के समय उन की प्रत्येक रूप से स्वयं पहुँच कर सहायता करता हूँ। सच तो यह है कि मैं इन समस्त बातों से नितान्त अनभिज्ञ हूँ। न मैं किसी के अन्तर जाता हूँ, न किसी की सहायता करता हूँ।

मित्रो ? यदि मैं इतना सामर्थवान होता तो स्वयं इस बीमारी में अपनी चिकित्सा क्यों न कर लेता ? संसार भ्रम में है जीव व्यर्थ पक्ष पाती और टेकी बने हुये हैं। क्या कहा जाय ?

यदि आप ध्यान पूर्वक विचार करें तो जान जायेंगे कि जो कुछ कबीर साहब वर्णन करते हैं वही गुरू नानक साहब की शिक्षा है। केवल शब्दों में अन्तर हो सकता है।

जीवों को मेरे ध्यान से जो लाभ पहुँचता है, व उनके विश्वास और दृढ़ संकल्प का परिणाम है। किन्तु वह उसका श्रेय मुझ को देते हैं। इसी प्रकार राम, कृष्ण, दाता दयाल, सांवले शाह और अन्यों को पूजने वाले या उनमें विश्वास रखने वाले, लाभ पहुँचने की दशा में उन्हें श्रेय देते हैं। यद्यपि वह स्वयं उनके पास शारीरिक रूप से पहुँचते नहीं हैं, जैसाकि पहले कहा गया है कि यह केवल विश्वासियों के दृढ़ संकल्प और विश्वास का परिणाम है, जो कि उन्हें लाभ पहुँचाता है। ऐसी दशा में क्या यह एक खेल तमाशा नहीं जो हो रहा है ? सोचो, विचारो और ध्यान करो। किन्तु वास्तव में अभी आप विचार करने योग्य नहीं हुये। अभी आप में अधिकार उत्पन्न नहीं हुआ। अभी संसार की ठोकरें नहीं लगीं। न पूरा अनुभव हुआ है। यह मार्ग तो उनके लिये है जिनको संसार की ठोकरें लग चुकी हैं, या अनुभव हो चुके हैं। अन्य शब्दों में जिन्होंने संसार के उतार-चढ़ाव देख लिये हैं। और नम्र, सूक्ष्म स्वाभाव वाले हैं।

इस क्रम में स्वमी जी महाराज की वाणी स्पष्ट वर्णन करती है कि जो विषयों से उदास हो चुका हो, जिसे वैराग्य हो चुका हो और जिसकी धन संतान से प्रीति हट चुकी हो। वह इस अध्यात्म के मार्ग में आने का अधिकारी है। ऐसा व्यक्ति समझ जाता है कि पुत्र होते भी रहते हैं, और मरते भी रहते हैं। धनता और निर्धनता चलती ही रहती है। क्यों कि यह संसार का नियम है और यहां पग पग पर द्वन्द, दुन्दिया तथा दुनियां का दृष्य है केवल ऐसा व्यक्ति ही अध्यात्म का अधिकारी गिना जा सकता है।

सन्तों कासासतसंग जन धारणा के लिपे नहीं हैं। जिसने B.A

बी० ए० पास ही नहीं किया वह M. A.एम० ए० में कैसे प्रवेश करेगा। पहले अधिकार, संस्सकार और फिर अध्यात्म। संत बड़े अनुभवी होते हैं। वह केवल किसी का अधिकार देख लेने पर ही रहस्य की या उच्च कोटि की बात बताते हैं। इस संसार का कर्त्ता हरि ही है। जैसा कि कबीर साहब बर्णन करते हैं। इस को ही कर्त्ता पुरुष कहते हैं। इसी का नाम क्रियेटर Creator है यह वास्तव में ब्रह्मश्र मन है। राधा स्वामी मत में इस काल पुरुष कहते हैं।

मानवीय मन इस ब्रह्मडी मन का अंश है। यही कारण है कि क्रयेटर Creator की भांति मानवीय मन भी ऐसे आश्चार्य जनक कार्य करता है, जिन्हें चमत्कार कह सकते हैं। जो कुछ मानव करता है, उसका मूल कारण उसका मन ही होता है। सुखमणि साहब में लिखा है कि प्रभु और है, हरि और है सत् और है। किन्तु संभवतः कोई ही सिक्ख इस बात को समझता होगा। तत्पश्चात् क्रियात्मिक जीवन है क्यों कि बिना रहनी के जीवन अधूरा है।

जो कुछ हमारे समक्ष हो रहा है, यह ब्रह्मडी मन या यूनीवर्सल माइन्ड Universal Mind का काम है। जिसका अंश हमारा तुम्हारा मन है। जैसी उस कर्त्ता पुरुष की इच्छा होती है वैसे ही सांसारिक कार्य व्यवसाय होंगे। वो अच्छे हों या बुरे, इसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं है।

जिस व्यक्ति को ऐसी समझ बूझ आ जाती है या अन्य शब्दों में वह जान जाता है कि यह सब ब्रह्मडी ही मन का खेल है। उसे स्वयं शान्ति मिल जाती है। सन्तों, साधुओं का आना, मेरा आना, युद्धों का होना, भूकम्प, महामारी आदि का प्राकटय सब कुछ कर्त्ता पुरुष या हरि की इच्छा के अर्न्तगत है। कहा गया है "काल ने रची त्रिलोकी सारी"।

मुझे भी केवल इस बात का ज्ञान हो जाने से शान्ति मिली। वरन् अपनी इस वर्त्तमान बीमारी में भी चिन्ता ग्रस्त होता।

यह दुख-सुख, मान-अपमान, हानि-लाभ, धनता, निर्धनता, हमारे अधिकार में नहीं है।

"हानि लाभ, जीवन मरण, यश अपयश, विधि हाथ"।

जिन २ ग्रहों में जीव की उत्पत्ति होती है, तारा गण की चाल के प्रभाव उस को प्रभावित करते हैं, और उसी के अनुसार जीव अपना भोग भोगता है।

आकाल पुरुष, काल-पुरुष या हरि से प्रथक है। जिसने अपनी सुरत को आकाल पुरुष से जोड़ लिया, वह तर गया। अन्य शब्दों में वह आवागमन से रहित हो गया। वही वास्तविक रूप में सच्चा संत है।

आप गुरू ग्रन्थ साहब को पढ़िये। वहां अकाल पुरुष का शब्द स्थान २ पर दृष्टि गोचर होगा। क्यों? क्योंकि अकाल पुरुष अंत है, लक्ष्य है, ध्रुपद है। जिसकी सुरत वहां तक पहुँच गई, उसे फिर दुख सुख नहीं व्यापता। वह वास्तविक अर्थ में ज्ञानी बन गया। कहा गया है—'साधो कर्त्ता कर्म से न्यारा" और जिस व्यक्ति को दुख, सुख न व्यापै, वह तो जीवन मुक्त हो गया। ऐसी अवस्था को विदेह गति भी कहते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या जीवन मुक्ति अवस्था वालों को रोग नहीं होता? उत्तर यह है कि ऐसे पुरुषों को भी रोग आदि होता है। शरीर के साथ रोग आदि का होना आवश्यक है। हाँ कष्ट की दशा में, या दुख-सुख से बचने के लिये श्रेष्ठ विधि, उत्तम उपाय, ऐसे व्यक्तियों के लिये तो यह है कि वह अपनी, सुरत को दयाल देश, अनामी पद, सत पद या आकाल पद में ले जायें। किन्तु यह भी मालिक की मौज पर निर्भर है, क्यों कि वह समर्थ है।

मैंने अपने जीवन में क्या किया ? मन में इच्छायें, तरंगें उठा करती थीं इसलिये उसे शान्त करने के लिये धर्मिक खेल खेला। भलाईयां कीं, शुभ कर्म किये। जब तक ज्ञान प्राप्त न हो, धार्मिक खेल या सांसारिक खेल खेलने में कोई अन्तर नहीं। और विवशतः यह खेल खेलने ही पड़ते हैं। जो कुछ हो रहा है, उसे मालिक की मौज जानों। जिसने ऐसा समझ लिया, वह ज्ञानी हो गया।

मैं सच कहता हूँ कि यदि मुझे कबीर की वाणी की समझ पहले आजाती तो मैं वर्षों तक धार्मिक उन्मत्तता में सिर न खपाता और न इतने पापड़ ही बेलने पड़ते।

मेरा जीवन अत्यन्त शुद्धता, स्वच्छता तथा पवित्रता में बीता है। इतना होते हुए भी इस वृद्धावस्था में मैंने जीवन प्रयन्त इतना कष्ट कभी भी नहीं उठाया। इस रोग ने मेरे नेत्र खोल दिये। मेरे मन में जो सच बोलने और भलाई करने का घमंड था, वह जाता रहा। इससे सिद्ध होता है कि भलाई और सचाई का रोग और कष्ट से कोई सम्बन्ध नहीं। यही कारण है कि बड़े २ महा पुरूषों ने अन्त में यही कहा है। "तेरी गति तू ही जाने" या 'बड़े २ अहंकारीये गर्व गले'। सच पूछो तो यह बुराई और भलाई करना भी अपने हाथ में नहीं। किन्तु यह रहस्य हर कोई समझ न सकेगा। जब तक कि उसे अनुभव न हो चुका हो। ज्योतिष विद्या के ज्ञाता कहते हैं। किजब नीच ग्रहों का कोप होता है तो मानव बुरे कर्म करने से बच नहीं सकता। उसके समस्त उपाय और विधि असफल हो जाते हैं। यद्यपि उपाय या पुरुषारथ मानवीय कर्त्तव्य में सम्मिलित हैं। मेरा अपना वृतान्त सुनो। किसी समय मैं मेसोपुटामियां के हमीदिया स्टेशन पर नियुक्त था। एक रात्री को स्वपन अवस्था में मैंने अपने आप को ब्रह्मण वंश की किसी स्त्री के साथ विषय भोग करते हुये देखा। प्रातः उठाकर अपना सिर धुना और अत्यन्त

दुखी हुआ। सोचा ऐसा क्यों हुआ ?

यह वृतान्त मैंने सच २ अपने पिता जी, और गुरु दाता दयाल जी को लिखा। पिता जी का उत्तर आया कि उन्होंने एक ज्योतिषी से पूछा है और वह बतलाता है कि ग्रह ही ऐसा कुरूर पड़ा हुआ था जिससे कि यह नीच कर्म होना आवश्यक था। दाता दयाल जी ने उत्तर में लिखा, प्रारब्ध कर्म अनुसार यह खेल तुमसे स्वप्न में हुआ। अच्छा हुआ। जाग्रत अवस्था में यदि ऐसा होता तो संसार की दृष्टि में गिर जाते, इसलिये इसे भूल जाओ।

मित्रो ? सबके साथ इस प्रकार की घटनायें और खेल होते हैं। चूँकि मैं सत्य प्रिय मनुष्य हूँ, मैंने बता दीं और व्यक्ति अपनी बुराइयों और दोषों को छिपा लेते हैं। केवल इतना ही अन्तर है। बुरे कर्म सभी शरीर और मन से करते हैं। मैं कह सकता हूँ कि यदि ऐसी किसी मशीन का आविष्कार हो जाये जो कि हमारे विचारों का मन में प्रतिबिंब बताये तो यह बड़े २ महानुभाव और महात्मा जन जो अपने आपको अत्यन्त शुद्ध, पवित्र भला कहते हैं, मलिन विचारों और वास्तविक भावों के सोचने पर जो ऐसी मशीन बताये तो यह आत्म घात करलें।

अब भी मुझ में अच्छे और बुरे बिचार आते रहते हैं किन्तु यह अलग बात है कि वह मुझ पर प्रभावित नहीं होते। यह मन बड़ा विचित्र है। इसका खेल भी आश्चर्य जनक है। मैं सदैव इस मन के सुधारने वाले विचारों में लगा रहता हूँ। प्रत्येक व्यक्ति के मन में भाव, विचारों का उठना स्वाभाविक है। किसी के रोके रुकते नहीं। यही विचार मानव में चंचलता उत्पन्न करने के कारण होते हैं।

मेरी समझ में आ गया है कि यह काल भगवान की सृष्टि है, इसलिये कोई त्रुटि हो जाये तो मैं परवाह भी नहीं करता। मैं इस

संसार में कपटी गुरू बन कर रहना नहीं चाहता। इतनी भक्ति और ज्ञान की बातें रहने पर भी मेरा अभी तक स्वप्न अवस्था पर परा अधिकार नहीं हुआ अर्थात स्वप्न में बहुधा यह स्मरण नहीं रहत ाकि मैं स्वप्न देख रहा हूँ।

हम सब कितने ही पाप करते हैं किन्तु वह 'समरथ' दाता मालिक हमारा ध्यान रखता है और हमें क्षमा करता रहता है। मैं अब यह समझता हूँ कि मैं अपने अवगुणों, अपराधों और दोषों का इत्तरदायी नहीं। क्यों ? क्यों कि—जितना भी प्रयास मुझसे अपने सुधार व उन्नति का हो ा रहता है, वह करता रहता हूँ। इतने पर भी यदि कोई खोट कसर रह जाये ो इस में मेरा क्या दोष व अपराध है ?मजबूरियां जहां हों वहां कोई क्या करे।

दाता ने लिखा है:--"द्वन्द में हमको फंसाया और पापी कर दिया।
दिल का बरतन वासनाओं, से हमारा भर दिया ॥"

जिसने संसार की उत्पक्ति की है, वह जाने उसका काम जाने। जब कोई बात अपने वश में ही नहीं तो क्या किया जा सकता है। यह सोचने का विषय है।

यदि किसी प्राणी को सचमुच अपनी उन्नति करनी हो तो उसे चाहिये कि अपने जीवन का प्रति दिन अध्ययन करता रहे, वह सोचे कि वह क्या करता है। उस का मन क्या सोचता रह ा है ? आप सब भी इसका साधन करके अपने जीवन को उच्च बना सकते हैं। औरों की बुराईयों और दोषों पर दृष्टि न हो:—"मत देख पराये औगुन" न जाने आप में कितनी बुराईयां भरी पड़ी हों, तुम सुधर जाओ तो तुम्हें संसार सुधरा हुआ दृष्टि गोचर होगा।

मैं रात के स्वप्नों पर विचार किया करता हूँ। विशेषकर यह जानना चाहता हूँ कि प्रत्येक स्वप्न का वास्तविक कारण क्या है ? मैंइस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि समस्त कार्य व्यवसाय, दृश्य, मन

पर पड़े संस्कारों और विचारों का प्रभाव हैं। इन्हीं विचारों और संस्कारों के अनुसार स्वप्न आते रहते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि मानव जाग्रति में अपने विचारों और संस्कारों के श्रेष्ठ बनाने के प्रयत्न में लगा रहे। जिससे कि उसे आपत्तियां न उठानी पड़ें। अच्छी २ पुस्तकों का अध्ययन, प्रेम भक्ति का व्यवहार और भली संगत मानवीय विचारों और संसकारों को श्रेष्ठ बनाने में बहुत सहायक होती हैं।

मित्रता उनसे करो जो अभी यात्री हैं। वही सहायक हो सकते हैं। वरन् जो लक्ष्य पर जा पहुँचा, उससे मित्रता कैसी और वह तुम्हारी क्या सहायता कर सकेगा ?

यह रचना कैसे हुई है ? कोई इस रहस्य को आज तक हल नहीं कर सका। विज्ञान भी बाल्यावस्था में कहा जा सकता है। सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, वृक्ष आदि कैसे बनते, बढ़ते और जीवन निर्वाह करते हैं ? क्या किसी ने इनका पूरा हाल आज तक जाना ?

कबीर साहब वर्णन करते हैं कि रचना इतनी गूढ़ और विशाल है कि उसके और हरि के गुन को लिखा नहीं जा सकता। और अन्त में यह कहते हैं कि श्रेष्ठ तो यही है कि मानव उस मालिक पर ही सब कुछ छोड़कर अपना जीवन निर्वाह करे या अन्य शब्दों में भगवत इच्छा पर रहे।

संसार किसी नियम पर स्थित है। यहां न्याय और अन्याय का व्यवहार होता रहता है। जो विष भक्षण करेगा, वह अवश्य मरेगा। अग्नि में हाथ डालेगा, जल जायेगा। और यदि इस बात का मानव को विश्वास हो जाये तो फिर चिंता किस बात की।

अपने कर्मों का फल, परिणाम भी होता है। परिणाम देखकर मानव घबरा जाता है।

देह तथा शरीर व मन का बनाने वाला कर्त्ता पुरुष है। देह

और मन के होते हुए दुख, सुख का होना भी अनिवार्य है। ज्ञानी अपने ज्ञान से काटता है तथा उसके बल पर दुख को सहन कर लेता है और इसके विपरीत अज्ञानी तथा मूर्ख रो पीट कर काटता है।

इस संसार में सुखी केवल वह है जिसने अपने मन को जीत लिया है। मन को जीतना क्या है ? इस मन से जहाँ से इसे जीवन शक्ति और गति मिलती है, उसके परे चले जाना। वह दशा है चौथे पद की, अकाल पद की, अनामी पद की। इस दशा में आने का प्रयत्न करो। इस को प्राप्त करने में लगे रहो। समय पर काम बन ही जायेगा।

सुरत मालिक का रूप बनकर प्रत्येक मानव के अन्तर खेलती रहती है और जब तक मानव को ज्ञान नहीं होता, यह दुख-सुख उठाती रहती है। अब मैं समझता हूँ कि जो कुछ मैंने जीवन में किया, यह सब विवशता थी। मैं इस सत्संग कार्य या अभ्यास आदि की ओर घसीटा गया। मेरी ग्रह भी ऐसा ही प्रगट करतीं हैं। स्मरण रहे ? जीव इस संसार में कुछ न कुछ विशेष ध्येय को लेकर आता है और अपना खेल खेलकर यहां से चला जाता है। वह ध्येय, मिशन या खेल कर्त्ता पुरुष की ओर से प्रदान किया हुआ होता है। जैसा कि मेरे सम्बन्ध में दाता दयाल जी ने वर्णन किया है।

तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेशा।
दुखी जीव को अंग लगा कर, लेजा गुरू के देशा ॥

सोचो ! कुछ मैंने किया। यह कार्य मेरे भाग्य में लिखा हुआ था। गुरू के देसा ले जाने का तात्पर्य यह है कि जीवों को सुख, शान्ति दिलाई जाये। क्यों कि वह नाना २ प्रकार के दुखों से दुखी हो रहे हैं। किन्तु मैंने जीवों को वह नाम नहीं दिया, जो आजकल के गुरुजन देते हैं। मैंने इन्हें सच्ची समझ दी है जिससे

कि अज्ञानियों का अज्ञान दूर हो जाये। जिसमें जितना अधिकार और सत्कार का था, अन्य शब्दों में जितना कोई मेरी शिक्षा को ग्रहण कर सका, उसने उतना ही भाग लेकर, उतनी ही शांति पाई, और लाभ उठाया।

जीव अपने अज्ञान से लुटे जा रहे हैं। वह समझते हैं कि गुरू या उनका इष्ट उनके अन्तर समय २ पर प्रकट होकर उनकी सहायता या पथ प्रदर्शन करता रहता है। ऐसा नहीं होता। वास्तव में उनका अपना ही विश्वास, दृढ़ संकल्प, भाव और विचार रूप धारण करके उनकी सहायता करता रहता है। इस पर भी यदि जीव अपने आप को स्वार्थी, लालची गुरुओं से लुटवाते फिरें तो दोष, अपराध उनका अपना है।

ऐ भारत वासियो। पन्थों और धर्मों के मानने वालो! सुनो आपको यह मानना पड़ेगा कि जिस स्पष्ट वर्णन से और नंगे शब्दों में मैंने आपको समझाने का प्रयत्न किया है, ऐसा संभवतः किसी ने ही आज तक किया हो। मैंने अपनी समझ के अनुसार शुद्ध हृदय से आपकी सेवा की है। आपको संभवतः ज्ञात नहीं कि मेरे पास अधिकतर ऐसे जीव आते रहे हैं जिन्होंने समय से पूर्व अपना ब्रह्मचर्य खोया है। चाहे यह बाल्यावस्था के विवाह के कारण या किसी अन्य कारण वश। ऐसे जीवों का चंचल हो जाना या भ्रम में आजाना अनिवार्य है, तब वह सहारे की खोज करते हुए गुरु दरबार या पथप्रदर्शक के पास पहुँच जाते हैं। जो ढूँढ़ते हैं, वह पाते हैं। अच्छा गुरू या पथप्रदर्शक इनके हाथ आ जाता है तो इनका जीवन सुधार देता है। वरन् यदि दुर्भाग्य वश किसी लालची स्वार्थी गुरू या पथ प्रदर्शक से इनकी भेंट हो गई तो फिर कुशलत नहीं। इन्हीं कारण वश मैं उच्च स्वरों में मानव जाति को सम्बोधित करते हुए कहता हूँ कि जो हुआ सो हुआ। अब अपने बाल

बच्चों के ब्रह्मचर्य की ओर अधिक से अधिक ध्यान दो। जिससे कि इनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थय ठीक रहे। और यह गुरुवों या पथप्रदर्शकों की खोज में भटकने से बच जायें। हमारे प्राचीन महा पुरुष और पूर्वज बड़े बुद्धिमान थे, जिन्होंने ब्रह्मचर्य पालन पर अधिक से अधिक बल दिया था। विश्वास एक ऐसी वस्तु है, जिससे मानव का मन एकाग्र हो जाता है। ऐसा होने पर उसकी अबलता और निर्बलता दूर हो जाती है। इसलिये प्रत्येक धर्म का आदेश है कि मानव किसी न किसी में विश्वास रक्खे। यह आगे बढ़ने की प्रथम सीढ़ी है। आपका विश्वास चाहे गुरू, मुहम्मद साहब गुरू नानक साहब, राम, कृष्ण या अन्य किसी भी पवित्र-पुनीत विभूतियों पर हो यह कोई बात नहीं, विश्वास का होना अनिवार्य है। वही काम बना देगा। मैं वृद्ध हो गया। ७६, ८० वर्ष की आयु हो गई। संसार से जाने का समय आ गया। मानवता मन्दिर की नींव आवश्य डाले जा रहा हूँ, जिससे कि मानव जाति को मनुष्य बनने का संकेत मिलता रहे। मनुष्य यदि मनुष्य बनकर रहेगा तो उसको लाभ पहुँचेगा, नहीं तो सब दुखी और चिंता ग्रस्त होकर जीयेंगे और इस दुख, संकट और चिन्ता को सहन करते हुए संसार से कूच करेंगे। ऐसी दशा में जीवन व्यतीत करने का क्या लाभ है। धिक्कार है ऐसे जीवन को। किन्तु स्मरण रहे कि मैं अपनी कोई गद्दी नहीं छोड़े जा रहा हूँ। जो भी व्यक्ति दूसरे की इसलिये सहायता करता है कि उसे शारीरिक, मनसिक और आत्मिक उन्नति प्राप्त हो। मैं समझता हूँ कि वह मेरी ही शिक्षा का प्रचार मेरे स्थान पर कर रहा है यही सच्चा मानवीय जीवन है, यही मेरी गद्दी है

सांसारिक दृष्टिकोण से मेरी सबसे अधिक शारीरिक सेवा, गोपाल दास ने की है। मुझे याद है कि जब यह प्रथम बार घर आया और मुझे डंडवत की तो मैंने अपनी स्त्री से कहा—देखो यह

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL



र्ष ४१

क्ते पूर्व जन्म का हमारा ऋणी है, ऋण से उऋण होने के लिये
ा है। वही बात अक्षरशः सत्य निकली। इस व्यक्ति ने मेरी स्त्री
की अत्यन्त सेवा की। यह सब कुछ होते हुए भी मैंने कभी इस पर
किसी प्रकार का आर्थिक बोझ नहीं डाला। चाहिये तो यह था कि
मैं अपनी गद्दी इसे दे जाऊँ और यह महन्तों की भांति कुशल
पूर्वक जीवन बिताये। किन्तु नहीं। न कोई मेरी गद्दी है, और न
मैं महन्तों की भांति इसे देखना चाहता हूँ। क्यों? इसलिये कि:—
द्दी पति है मूढ़ मति, जो इसमें फंसा गई बुद्धि नसी यह भी काल
जाल है। यह व्यक्ति स्वयं सेवक संघ का सदस्य है। मैंने इससे
दिया है कि तुम अपनी संस्था के सदस्यों को विशेष कर नव-
ों को शारीरिक और मानसिक स्वास्थय और शुभ श्रेष्ठ विच
करो और प्रचार किया करो जिस से कि उनका स्तर उच्च हो
प्रत्येक ओर उन्नति और अन्त में शांति दृष्टिगोचर हो। प्रार
यह व्यक्ति हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज का शिष्य श
कहा करते थे कि किसी का सुधार करना हो तो यह आव
कि गुरू बनकर ही कार्य किया जाये। भाई, चाचा, मित्र
र भी यह काम और सुधार किया जा सकता है।
सार यदि गोपाल दास किसी स्थति में समाज व
ँचा करने का प्रयत्न करे तो सही अर्थ में
ना है। अतः यही काम मैं इसर
ंघ के सदस्यों क

ग
का
कह
ावक

कि
चैन
रोगं
आव
आरा
हना

॥ मनुष्य बनो ॥

व्यतीत करे। यही शिक्षा इन्हें देने के लिये आया हूँ। न मुझे किस
धर्म से प्रयोजन है और न किसी पन्थ से। अर्थात मैं पक्षपाती
हूँ, मैं तो प्रत्येक प्राणी के भले की भावना रखता हूँ। यही रहस्य,
सारभेद और सचाई मुझे राधा स्वामी मत से प्राप्त हुई है।
पुकार की। वह सफल हुये। किन्तु सिक्खों का एक मत स्थापित
हो गया। मैं भी तो जीवों की उन्नति और सुधार के लिये आया
हूँ, किन्तु मैं किसी धर्म, पंथ और सम्प्रदाय की नीव नहीं डालन
चाहता हूँ।

यहां इस संसार में भेद भाव का न समाप्त होने व
म प्रचलित है। इस संतमत और राधा स्वामी मत को ही
इस में प्रथक २ केन्द्र बन गये हैं। और एक केन्द्र दूसरे के
करता है जो राधास्वमी मत के नियम के विरुद्ध है। क्य
जाय यहां इस संसार में स्वार्थ का राज्य है, किन्तु संतमत की
यह पाठ नहीं पढ़ाती। यह सब को बिशाल दृष्टि रखने का
देती है। और सबके मेल मिलाप और उनति के पक्ष में है।
मैंने यह मानवता मन्दिर इस विचार से स्थापित किया है
ता के नियमों पर चलकर संसार वाले सुख, शान्ति औ
। इसमें एक औषधालय भी खोल दिया है जिससे
से मुक्त रह सकें। जहां मानव की आत्मिक
है, जो कि संत मत की जान
ावश्यक है। केवल

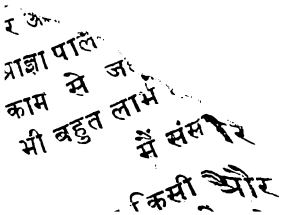

र अ
ाज्ञा पाल
काम से ज
भी बहुत लाभ
मैं संस
किसी और

शक्षा की
सि शारीरिक
ालय का यहां
आप सज्जनों का
सलिये मैं चाहता हूँ
कर दूँ, जिससे कि
र्य यह है कि कोई
पे विचार आया

कथा है:—
में भूँठा वर्त रहा।" मैं तो
कि आप सब का जीवन सुख-
में दे सकता हूँ। पाखंड जाल का

न में मैंने जो कुछ कहा हो या लिखा
दावा करना कि मैंने जो कुछ किया,
, त्रुटि में सम्मिलित होगा। हां! मैं इतना
कि प्रत्येक कार्य में मेरा हृदय शत प्रतिशत
मैं तो इतना जानता हूँ कि यदि कबीर साहब
राज को, या औरों को अपने अनुभव वर्णन
र प्राप्त है तो यह अधिकार मुझे भी प्राप्त है।
ा चला। वह त्रुटि पूर्ण हों, तो उनका उत्तरदा
जी और हुजूर सांवले शाह पर होगा जिन्हों
का कार्य सौंपा था।

सत्संग

... मेरी ...

र । ... है । अभी ...

...ति मास एक बार यहां आक...

समय पर यह अपना चार्ज शाह...

उसे योग्य न समझें तो यह काम न...

को सौंप दें । नन्द लाल अपने पांच...

ने मुझे कहा था कि चारों बहुयें सेवा...

नन्दलाल को क्वांरा रहने और विवाह...

इसने स्वीकार किया और आज तक विवाह...

वर्ष से अधिक आयु हो चुकी । इसकी माता...

...धिक आयु की है । यह व्यक्ति आचार विच...

...चा, मन का शुद्ध, सेवा और प्रेम भाव रख...

आने पर :पीरेमुगां साहब अपना उत्तराधिका...

...ी को बनालें और मानवता मंदिर और स...

...ोंन दें । मानवता मन्दिर के वर्तमान रहने...

इस सत्संग के कार्य को किसी को सौंप दूँ चुनाचे मैंने अपने
राम प्रकाश बी० ए० की पत्नी को प्रसाद दिया कि उनके जो
...न हो, उसका नाम शाह दयाल जंग रख...
...ी ले ले। राम प्रकाश जी को आ...
...तवान रहें जिससे कि बच्चे...
...र्थ में उनसे और...

यदि कोई पीरे मुगां साहब सत्संग हो तो उचित होगा कि वह
में सम्मिलित न हों। यह और भी श्रेष्ठ होगा कि वह यहां से चल
जांय। मैं अनुशासन का मानने वाला हूँ। क्योंकि अनुशासन
के बिना को काम ठीक रूप में हो नहीं सकता। पीरेमुगां साहब
की इच्छा पर निर्भर कि वह दो चार ट्यूशन यहां आकर करलें
जिस से कि वह किसी रूप में भी किसी पर यहां बोझ भार सि
न हों।

मेरी इस घोषणा से यह मत समझ लेना कि मैं अभी ।
... चलाने का चार्ज पीरेमुगां को ... है ।